दलित साहित्य की वैचारिकी और अंबेडकरवाद

- निर्मल सुवासिया

शोध सार

दलित साहित्य का जन्म उत्पीड़न के गर्भ से हुआ है। यह उत्पीड़न अनादि काल से हो रहा है। उत्पीड़न की जड़ में भारतीय समाज है जो विसंगतियों से भरा हैं। इन्हीं विसंगतियों के चलते अनादिकाल से हिन्दू समाज का एक हिस्सा जिसे दलित कहा जाता है, हाशिए का जीवन जीने के लिए मजबूर है। यहां के सवर्ण समूह ने अपने ही धर्म के इस हिस्से को गुलाम की जंजीरों में जकड़कर उनके उन्नयन के मार्ग को बंद किया। समाज में आरंभ से ही दो वर्ग रहे है जिनमें वर्चस्व और अधिकार की लड़ाई होती रही। वर्चस्ववाद के खिलाफ प्रथम विद्रोह गौतम बुद्ध ने शूद्रो एवं स्त्रियों को पूजा उपासना का अधिकार देकर किया। वर्चस्ववाद की आधुनिक अभिव्यक्ति दलित साहित्य में मुखरित हुई है। दलितों की पीड़ा को व्यक्त करने और दलित लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य, दलित साहित्य की श्रेणी में आता है। इस साहित्य का लक्ष्य दलित जन को मनुष्य की नजर से देखने एवं व्यवहार करने का पक्षधर है। समाज की सड़ी गली व्यवस्था दलित व्यक्ति को जानवर से भी बदतर ज़िंदगी जीने को मजबूर करती है। हजारों सालों से चली आ रही इस गैर बराबरी वाली सामाजिक व्यवस्था एवं अमानुषिक प्रवृति को दलित साहित्य स्वीकार नहीं करता। अस्वीकृति का मूल आधार डॉ अंबेडकर की वैचारिक दृष्टि है। डॉ अंबेडकर के मानव मुक्ति के विचार –"शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो" के साथ दलित साहित्य दलितों में चेतना, अस्मिता, अधिकार, आत्मसम्मान और स्वाभिमान के लिए प्रेरित करता है। डॉ अंबेडकर के विचारों को आत्मसात कर अपने समाज और इस सामाजिक व्यवस्था को पूर्णतः बदलना ही अंबेडकरवाद है।

बीज शब्द

अंबेडकरवाद, दलित, अधिकार, स्वतंत्रता, समता, बंधुता, वैचारिकी, आत्मपहचान, अस्पृश्यता, जातिवाद, शोषण, व्यवस्था, वर्ण, गुलाम, मनुष्य।

मूल आलेख

दलित साहित्य अर्थात दलित लेखकों द्वारा दलित चेतना से दलितों के विषय में किया गया लेखन। दलित साहित्य का स्वरूप उसके अंतर्गत होने वाले दलित्व में है और उसका प्रयोजन स्पष्ट है। दलित समाज को गुलामी से अवगत कराना, उसे इस गुलामी के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित करना और सवर्ण समाज के समक्ष अपनी व्यथा और वेदनाओं का बयान करना ही दलित साहित्य का प्रयोजन है।

इस साहित्य को विभिन्न विद्वानों ने अलग अलग प्रकार से परिभाषित किया है। डॉ. अभय कुमार दुबे के अनुसार "स्वतन्त्रता, समता और बंधुता की मूल चेतना दलित साहित्य की मूल गर्भ चेतना है। दलित साहित्य की अनुभूति परंपरागत साहित्य से बिलकुल अलग है, क्योंकि दलित चेतना मुक्ति की बात करती है।" डॉ. दुबे दलित साहित्य में स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व को महत्वपूर्ण मानते है वे इन तत्वों के आधार पर ही दलितों की चेतना की बात करते है। उनका स्पष्ट मानना है कि दलित साहित्य के ये प्राण तत्व है।

बाबुराज बागुल ने दलित साहित्य को परिभाषित करते हुए कहा है –"मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करने वाला, मनुष्य को महान मानने वाला, वंश, वर्ण और जाति का प्रबल विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।"[1] बागुल ने एक तरह से साहित्य की सौन्दर्यशास्त्रीय परंपरा का ही विरोध किया है वे साहित्य की उस मान्यता के खिलाफ है जिसमें साहित्य का लक्ष्य कला को स्वीकार किया गया है। बागुल के दृष्टिकोण में साहित्य का मूल मनुष्य को महान मानना होना चाहिए।

दलित चिंतक कंवल भारती कहते है –"दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है।"[2] इस तरह भारती

केवल दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही दलित साहित्य की कोटि में रखते है। उनका मंतव्य स्पष्ट है कि दलित की पीड़ा दलित ही अभिव्यक्त कर सकता है। अन्य की अभिव्यक्ति तो सहानुभूति या दया का साहित्य हो जाएगा।

कुछ इसी अर्थ की परिभाषा डॉ धर्मवीर देते है –"दलित साहित्य वह है जिसे दलित लेखक लिखता है।"[3] ये भी जन्मना दलित को ही दलित साहित्य का सृजक मानते है।

डॉ शरणकुमार लिंबाले के अनुसार – "हर एक मनुष्य को स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और भयमुक्त सुरक्षा मिलनी चाहिए, इसी पृष्ठभूमि पर निर्मित एक प्रवृति साहित्य में अभिव्यक्त हो रही है। इस प्रवृति का नाम दलित साहित्य है। दलित साहित्य मनुष्य को केंद्र में रखता है। मनुष्य के सुख दुख में समरस होता है। मनुष्य को महान मानता है। मनुष्य को सम्यक क्रांति की ओर ले जाता है।"[4] आजादी के बाद भी देश में दलितों कि स्थिति में कोई आमूलचुल परिवर्तन नहीं आया न ही साहित्य में विशेष महत्व मिला। इसी के नतीजतन दलितों ने अपनी पीड़ा और शोषण की कहानी लिखने के लिए नए साहित्य का निर्माण कर दिया। जो उनका अपना साहित्य था जिसमें भेदभाव नही है। इसका मूल मनुष्य की सुरक्षा है।

मराठी कवि नारायण सूर्वे का कहना है – "दलित संज्ञा मूलतः प्रश्न सूचक है। महार, चमार, माँग, कसाई, भंगी जैसी जातियों की स्थितियों के प्रश्नों पर विचार तथा रचनाओ द्वारा उसे प्रस्तुत करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।"[5] सूर्वे ने दलितों की विद्रोही प्रवृति को प्रथम रखा है। दलित साहित्य में दलितों की सामाजिक स्थिति के लिए प्रश्न किया जाता है। एक ही समाज में रहते हुए सवर्ण और दलित की स्थिति में जमीन आसमान का अंतर दिखलाई पड़ता है। दलित को न्याय, शिक्षा, समानता तथा स्वतंत्रता आदि मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। साहित्य में अपनी स्थिति में सुधार हेतु ही प्रश्न चिह्न लगाया गया है।

इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि दलित साहित्य दलित विद्रोह का साहित्य है। इस साहित्य ने दलितों को आत्मपहचान दी है। इसके मूल में विद्रोह की भावना है। विद्रोह किसी प्रवृति के खिलाफ नहीं बल्कि वर्तमान व्यवस्था के प्रति है जो उन्हें मानवोचित जीवन बिताने के अधिकार से वंचित रखती है। इसलिए हम निसंदेह कह सकते है कि दलित उस वर्ग को सूचित करता है जिसे सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारणों से अस्पृश्यता, जातिवाद और शोषण की अमानवीय व्यवस्था से सामना करना पड़ा है और अस्पृश्यता के नाम पर सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक संस्थाओं से दूर रखा गया है। दलित साहित्य दलित चेतना की उत्कट और सार्थक अभिव्यक्ति है। यह जिस संवेदना, मानवीय मूल्य और सरोकारों की बात करता है, उसकी जड़ में सामाजिक न्याय, जातीय समरसता, समता, बंधुत्व और सम्मान की भावना निहित है। यह एक ऐसी साहित्यिक धारा है जो मानवीय संवेदना और सामाजिक सरोकारों की यथार्थवादी अभिव्यक्ति कर उसकी विसंगतियों को छिन्न भिन्न कर देना चाहती है। यही दलित साहित्य की वैचारिकी है। दलित साहित्य की वैयक्तिक संरचना के मूल में बौद्ध चिंतन, ज्योतिबा फुले और आंबेडकर के विचार और दर्शन है।

साहित्य में दलित चेतना को लेकर लेखन बुद्ध के समय से आरंभ हुआ। बुद्ध ने समाज में लोकतंत्र को स्थापित कर पूजा उपासना का अधिकार शूद्रों के साथ स्त्रियों को भी दिया। बौद्ध साहित्य को दलित साहित्य के प्रेरणा के महत्वपूर्ण स्रोत के बरक्स देख सकते है। सिद्ध और नाथ साहित्य के कवियों ने भी अस्पृश्य मनुष्य को अपनी साधना पद्धति में स्थान दिया। डॉ प्रेमशंकर लिखते है –"नाथ सिद्ध कवियों में कई शूद्र नाथ सिद्ध कवि थे। इन्होने जाति व्यवस्था, ब्राह्मणवादी संस्कृति और साहित्य के विरोध में सशक्त अभिव्यक्ति के द्वारा अपने संघर्ष को जीवंत रखा है।"[6] वर्ण, जाति और ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध भक्तिकाल में रैदास और कबीर ने भी किया है। इनकी क्रांति से प्रभावित होकर माताप्रसाद ने तो दलित साहित्य का प्रेरणा स्रोत ही

संत साहित्य को माना और लिखा है – "संतों के विचारों से दलित जाति को प्रेरणा मिली, उनमें आत्मविश्वास जागृत हुआ।"[7]

डॉ अंबेडकर के जीवन और साहित्य ने ही दलित साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया है। दलित साहित्य का आरंभ 1920 से लेकर 1960 तक का काल माना जाता है। इस काल में बहुत कुछ लिखा गया है। बाबा साहब अंबेडकर की जो पत्रिकाएँ निकलती थीं, उन पत्रिकाओं में दलित लेखन प्रकाशित हुआ है। कई लेख आए हैं, कई कविताएँ आई हैं, कई कथाएँ आई हैं, मगर ये किताब के रूप में नहीं आई। इस साहित्य का रूप था बाबा साहब अंबेडकर के कार्य और विचार लोगों तक पहुँचाना। यह 1956 तक चला। "1956 तक दलित साहित्य कोई संपादक छापता नहीं था, दलित साहित्य गया तो वे कचरे के डिब्बे में फेंक देते थे। कहते थे यह साहित्य नहीं, गंदगी है, ऐसा कोई साहित्य होता है? इस दौरान मुख्य रूप से सत्यकथा प्रकाशित होती थी। ये मराठी की एक अनियतकालीन पत्रिका थी। इसमें मराठी के जाने–माने लेखक लिखते थे और सत्यकथा में जो प्रकाशित होता था, वही साहित्य माना जाता था और इसमें लिखने वालों को लेखक। इसके खिलाफ दलित लेखकों ने आंदोलन चलाया कि इस पत्रिका को वे नहीं मानेंगे। उन्होने अपनी पत्रिकाएँ चालू कर दी।"[8] यही आंदोलन साहित्यिक धरातल पर दलित साहित्य की वैचारिक भूमि बन गया।

दलित लेखकों के पास एक क्रांतिकारी लक्ष्य था कि दलित साहित्य को व्यवस्था विरोधी साहित्य के रूप में उभारना है। इसे दलित लेखकों ने पत्रिकाएँ निकालीं, सम्मेलन शुरू कर दिए कि अगर आप साहित्य सम्मेलनों में हमें नहीं बुलाते तो हम अपने साहित्य सम्मेलन शुरू करेंगे। अपनी साहित्य पत्रिका में आप हमारा लेखन नहीं छापते, तो हम अपनी पत्रिकाएँ निकालेंगे और अपना अलग साहित्य छापेंगे। आप हमारे साहित्य पर लिखते तो हम अपने साहित्य पर लिखेंगे। इसके बाद तो दलित साहित्य की एक बाढ़–सी आ गई। जब दलित लेखकों ने खुद छापना शुरू कर दिया तब मुख्यधारा के लेखक परेशान होने लगे।

दलित साहित्य का वैचारिक आधार अंबेडकर के विचार है। दलित साहित्य के वैचारिक ऊर्जा के रूप में तीन महत्त्वपूर्ण स्रोतों को देख सकते है। प्रथम मूल स्रोत अंबेडकरी विचारधारा और उनका आंदोलन ही है। सैकड़ों वर्षों से इस देश के दलित वर्ण व्यवस्था के शिकार रहे हैं। दलितों को हमेशा से पीसा और रौंदा गया है। वर्षों तक देश के दलित इस गुलामी से छुटकारा नहीं पा सके। वर्ण–व्यवस्था की गुलामी से छुटकारा डॉ. बाबा साहब ने ही दिलाया है। उन्होंने इस देश के दलितों को नई अस्मिता प्रदान की और उनके अधिकारों के लिए शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संगठित रहो का संदेश दिया। उनके इस संदेश ने सारे दलित समाज में सांस्कृतिक हलचल पैदा कर दी। इस हलचल से दलितों को एक नया तेवर मिला और एक नई पहचान बनी। दलित साहित्य का दूसरा मूल स्रोत है – जाति–व्यवस्था। इसकी वजह से ही दलित साहित्य अस्तित्व में आया। भारत में जब तक जाति–व्यवस्था रहेगी, तब तक दलित साहित्य भी रहेगा।

तीसरा मूल स्रोत है – आजादी, लोकतंत्र और शिक्षा का प्रचार शिक्षा की वजह से ही दलितों में जागृति पैदा हुई है। देश का दलित सोचने लगा है कि देश स्वतंत्र है तो हम क्यों नहीं? आज शिक्षा पर किसी एक वर्ग का एकाधिकार नहीं है। शिक्षा एवं कानून से वर्णव्यवस्था ध्वस्त होती नज़र आ रही है।

सबसे पहले अंबेडकर ने ही 'जनता' तथा 'मूकनायक' सप्ताहिक पत्र निकालकर दलितों को अभिव्यक्ति के महत्त्व से परिचित करवाया था। तभी महाराष्ट्र में दलित साहित्य अस्तित्व में आया और आज दलित साहित्य ही मराठी साहित्य की मुख्यधारा है। प्रसिद्ध मराठी दलित साहित्यकार डॉ. गंगाधर पानतावणे ने लिखा है कि – "हमारे साहित्य की प्रेरणा केवल डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर और उनकी क्रांतिकारी विचारधारा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। कई समालोचक दलित साहित्य का रिश्ता कभी मार्क्सवाद से, कभी हिन्दूवाद से या कभी नीग्रो साहित्य से जोड़ते हैं। मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ कि हमारे दलित साहित्य की प्रेरणा न मार्क्सवाद है, न हिन्दूवाद है,

न नीग्रो साहित्य है। दलित साहित्य की प्रेरणा केवल अम्बेडकरवाद है। हाँ! एक बात अवश्य माननी होगी कि नीग्रो साहित्य तथा दलित साहित्य में प्रतिबिम्बित व्यथा, वेदना मानवीय आक्रोश है। लेकिन नीग्रो अछूत नहीं थे और नहीं हैं। भारतीय दलित अछूत था और अछूत है। छुआछूत तो भारतीय जीवन की पहचान है। बाबा साहब ने इस सन्दर्भ में एक नये शब्द की खोज की। उन्होंने कहा भारत में अस्पृश्यता गहरी और भीषण है। उसे धर्म का आधार माना है। अछूतपन गुलामी से कहीं ज्यादा क्रूर है।"[9]

दलित साहित्य को सबसे अधिक डॉ. अम्बेडकर के जीवन और साहित्य ने ही प्रभावित किया है। शताब्दियों से अशिक्षा, अज्ञान एवं दरिद्रता के अँधेरे में भटकते हुए इस वर्ग के लिए डॉ. अम्बेडकर एक सूर्य के रूप में प्राप्त हुए। जिसने उन्हें समता, शिक्षा, सम्मान का प्रकाश प्रदान किया। डॉ. अम्बेडकर को अपने बचपन में ही अस्पृश्यता के अभिशाप का आभास हो गया था। इस सम्बन्ध में डब्लू. एन. कुबेर ने लिखा है कि– "छुआछूत का प्रहार कितना भीषण है, इसका अहसास अम्बेडकर को छात्र जीवन में ही हो गया था। एक गाड़ीवान ने उन्हें और उनके भाई को अपने साथ गाड़ी में नहीं बैठने दिया था। अम्बेडकर और उसका भाई मसूर रेलवे स्टेशन से गोरेगांव जा रहे थे। उन्होंने एक गाड़ी भाड़े पर तय की। अभी गाड़ी कुछ ही दूर चली थी कि गाड़ीवान को यह पता चल गया कि ये लड़के किस जाति के हैं। उसने जाने से इन्कार कर दिया। इन दोनों बच्चों ने गाड़ीवान को दुगुना किराया दिया। भीमराव के बड़े भाई ने गाड़ी हाँकी और गाड़ीवान गाड़ी के पीछे–पीछे पैदल चला कि कहीं छूत का भूत न चढ़ जाय। पूरे रास्ते उन्हें पीने के लिए पानी तक नहीं मिला। अम्बेडकर को अब पता चला कि वे ऐसी अभागी जाति में पैदा हुए हैं, जिसे छूना पाप है। एक और कटु अनुभव यह था कि कोई नाई उनके बाल नहीं काटता था और भीम की बहन को ही उनके बाल काटने पड़ते थे। अछूतों के लिए यह निरादर भाव सर्वत्र व्याप्त था।"[10] "छात्र जीवन में भी ऐसे कटु अनुभव होते रहे। अध्यापक उनकी कापी को नहीं

छूते थे। वे सवर्ण छात्रों के साथ खेल नहीं सकते थे। इस कारण डॉ. अम्बेडकर के मन में हिन्दुओं और हिन्दू धर्म के प्रति अपार घृणा पैदा हो गयी थी। सेवा के दौरान उन्हें जो अनुभव हुए, वे रोंगटे खड़े करने वाले हैं। जब वे बड़ौदा पहुँचे, तो उन्हें लेने के लिए स्टेशन पर कोई नहीं आया। रहने के लिए उन्हें एक भी जगह नहीं मिली। किसी भी होटल में उन्हें प्रवेश नहीं मिला। कोई भी मकान मालिक उन्हें किरायेदार के रूप में रखने को तैयार नहीं था। अन्त में, नाम बदलकर उन्होंने एक पारसी के होटल में आश्रय लिया। मालिकों को जब असलियत का पता चला तो उन्हें मारने दौड़े। अपने दफ्तर में भी उन्हें बहुत ही अपमानजनक व्यवहार मिला। पतित होने के डर से चपरासी फाइलों को उनके ऊपर या मेज पर फेंक देता था। उन्हें पीने को पानी नहीं मिलता था।"[11] अतः डॉ. अम्बेडकर ने अपना सम्पूर्ण जीवन दलित समाज को अस्पृश्यता के इस अभिशाप से मुक्ति दिलाने में लगा दिया।

हिन्दी दलित साहित्यकारों का एक बड़ा हिस्सा डॉ. अम्बेडकर के विचारों के अनुरूप ही साहित्य सृजन कर रहा है। इस सम्बन्ध में वरिष्ठ दलित साहित्यकार कंवल भारती का कथन सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है कि – "दलित वर्गों के लोग डॉ. अम्बेडकर को इसलिए सम्मान देते हैं और इसलिए पूजते हैं कि उन्होंने दलितों को गुलामी का अहसास कराया था और उनकी मुक्ति की लड़ाई लड़ी थी। यह वह महान कार्य था, जो किसी भी हिन्दू नेता ने नहीं किया था।"[12] डॉ. अम्बेडकर वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दू धर्म की आलोचना की और बताया कि समाज में जिस असमानता और छुआछूत का बोलबाला है वह हिन्दू धर्मशास्त्र के कारण ही है। इसके लिए उन्होंने वर्ण–व्यवस्था को दोषी माना।

25 दिसम्बर, 1927 को डॉ. अम्बेडकर ने सदियों से चली आ रही हिन्दू कानून की पुस्तक मनुस्मृति की सार्वजनिक होली जलायी, जिसे अछूतों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक दासता की जड़ समझा जाता है। डॉ. अम्बेडकर ने महाड़ में एक अछूत सम्मेलन का आयोजन करवार और घोर संघर्ष करने के उपरान्त महाड़ के चावदार तालाब का पानी जो कि अछूतों के लिए प्रतिबन्ध था उसे सार्वजनिक करने का प्रयास किया। अपने भाषण

में दलितों को प्रेरणा दी कि "कुलीनता और हीनता की भावना को समाप्त किया जाये, इसके लिए अछूतों को चाहिए कि वे अपना पुराना कार्य छोड़ें तथा सरकारी नौकरियों में भर्ती हों खेती के लिए जंगलों में खाली जमीन पर अधिकार करें।"[13]

दलितोद्धार का मूलाधार शिक्षा एवं आत्मनिर्भरता ही था। डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को शिक्षित होने तथा आर्थिक रूप से मजबूत होने के लिए 28 सितम्बर, 1932 को बम्बई की एक सभा में दलितों को सम्बोधित करते हुए कहा कि "मन्दिर प्रवेश आन्दोलन का उद्देश्य अच्छा है, पर तुम्हें आध्यात्मिक उत्थान की अपेक्षा भौतिक उन्नति की ओर अधिक ध्यान देना होगा। धन के अभाव में खाने को भोजन, पहनने को वस्त्र तथा बच्चों को शिक्षा के अवसर व बीमारी में इलाज की सुविधाएँ नहीं मिलतीं। इसलिए तुम्हें अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने की ओर अधिक ध्यान देना है। तुम्हें अपने संघर्ष और शक्ति को सुदृढ़ बनाना चाहिए ताकि जीवन में भौतिक उन्नति भी हो।"[14]

बाबा साहेब अम्बेडकर दलितों को अन्धविश्वास से बाहर निकाल कर आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक क्षेत्र में जागरूक करना चाहते थे और थाना जिले के कसारा की एक कान्फ्रेन्स में कहा कि – "आप आध्यात्मिकता की धर्मान्ध बातों में न फँसे क्योंकि इन्हीं बातों ने आपको शोषित बनाया है। आपके कष्ट व कठिनाइयाँ इसलिए नहीं हैं कि वे पूर्व निर्धारित हैं, बल्कि अन्य लोगों द्वारा किये गये अन्याय व शोषण के कारण हैं। अतः भाग्य में विश्वास मत करो, अपनी शक्ति में विश्वास करों।"[15]

1 मार्च, 1933 को एक अन्य सभा में डॉ. अम्बेडकर ने दलितों से आग्रह किया, "तुम्हें अपनी दासता स्वयं मिटानी है। उसके अन्त के लिए ईश्वर या अतिमानव पर निर्भर मत रहना। आपकी मुक्ति राजनीतिक शक्ति में निहित है न कि तीर्थ स्थानों में। तुम अपना संघर्ष जारी रखो और उन बुराइयों का त्याग करो जिनसे तुम बर्बाद हुए हो।"[16]

डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में दलितोद्धार आन्दोलन ने सचमुच एक नयी करवट ली। पूरे देश का दलित वर्ग इससे जुड़ गया था। दलितों ने गाँवों में उन व्यवस्थाओं का उल्लंघन करना शुरू कर दिया जो उन पर थोपी गयी थीं। डॉ. अम्बेडकर के अथक प्रयासों के कारण ही स्वाधीन

भारत के संविधान में आरक्षण की व्यवस्था की गयी जो कि दलितों के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इसके साथ ही डॉ. अम्बेडकर ने जाति, वर्ग, लिंग, भेद को त्याग कर सबके लिए समानता और स्वतन्त्रता को भारतीयों के लिए मौलिक अधिकार के रूप में संविधान का अंग बनाया।

डॉ. अम्बेडकर ने दलितोद्धार आन्दोलन के माध्यम से दलितों को मानवाधिकार दिलाने के लिए एक देशव्यापी कार्यक्रम तैयार किया और देश भर के लोगों को एकजुट होकर संघर्षरत होने के लिए प्रेरित करने का बीड़ा उठाया। अछूतों के उद्धार के लिए वे चाहते थे कि दलित व शोषित में सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक रूप से जागृति आये। बाबा साहेब के दलितोद्धार आन्दोलन के पीछे न तो यश पाने को भावना थी और न ही कोई दिखावा था। वे स्वयं अछूत थे। उन्होंने अपने जीवन में कदम–कदम पर अस्पृश्यता व अपमान का सामना किया था। उनका मुख्य ध्येय दलितों को मानवीय अधिकार दिलाना था। दलितों को भी यह जन्म सिद्ध अधिकार था कि वे अपने सामाजिक व राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करें और पढ़–लिख कर सभ्य बनें।

बाबा साहेब अम्बेडकर ने एक ओर अछूतों को मानवीय अधिकारों के प्रति सचेत किया और दूसरी ओर कट्टर हिन्दुओं को चेतावनी दी कि उन्हें अपने हृदय में मानवीय भावनाओं का विकास करना चाहिए। अछूतों को भी मनुष्य समझ कर उनके साथ समानता का व्यवहार करना चाहिए। अम्बेडकर एक सामाजिक क्रान्ति के जनक थे। उन्होंने दलित वर्ग को दलितोद्धार आन्दोलन से नयी चेतना और प्रेरणा दी। शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो जहाँ उनका नारा था, वहीं जाति–पाँति के उन्मूलन पर आधारित समानतावादी समाज की स्थापना उनका उद्देश्य था। जाति–पाँति को वे भारतीय वर्ण–व्यवस्था का अनिवार्य अंग मानते थे।

निष्कर्षतः डॉ. आंबेडकर ने भारत की तीन चौथाई अर्थात 90 प्रतिशत आबादी में दलितों की मुक्ति के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष किया और एक हद तक सफल भी रहे। बाबा साहेब ने अपने जीवन और लेखन से निरन्तर हिन्दू धर्म की प्रत्येक मान्यता–ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, अवतारवाद, भाग्यवाद, स्वर्ग नर्क तथा पुर्नजन्मवाद आदि का विरोध किया, जिससे दलित वर्ग में वैज्ञानिक चेतना जागृत हो सके। बाबासाहेब मानते थे कि राजनैतिक प्रजातंत्र से ही सामाजिक–

आर्थिक प्रजातंत्र को भी मजबूत किया जा सकता है। बाबासाहेब के शिक्षा–सिद्धान्तों को सही ढंग से आत्मसात कर लिया जाए तो, निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारत में शिक्षा का स्तर सशक्त और प्रभावशाली हो सकता हैं, जिसमें सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक समस्याओं का समाधान करके एक सच्चे और आदर्श लोकतंत्र की स्थापना की जा सकती है दलित साहित्य की मूल अवधारणा समता, बंधुता और न्याय आधारित समाज का निर्माण कर सके। जहां मनुष्य को उसके जाति, धर्म, लिंग, वर्ग को नजरंदाज कर मनुष्य की श्रेणी में ही रखेगा।

---

[1] प्रमोद कोवप्रत: हिंदी दलित साहित्य का विकास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 50

[2] वही, पृ. 50

[3] एन सिंह: दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ. 69

[4] शरणकुमार लिंबाले: दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 42

[5] ओमप्रकाश वाल्मीकि: दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 15

[6] एन सिंह: दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 84

[7] वही, पृ. 85

[8] शरणकुमार लिंबाले: दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, 2016, नई दिल्ली, पृ. 103

[9] एन सिंह: शिखर की ओर, कर्मवीर भारती प्रकाशन, जौनपुर, 1991, पृ. 299

[10] डब्ल्यू एन कुबेर: भीमराव अंबेडकर, सूचना एवं प्रसार विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1978, पृ. 9

[11] मधु लिमये: डॉ अंबेडकर : एक चिंतन, आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली, 1991, पृ. 3

[12] कंवल भारती: अंबेडकर : एक पुनर्मूल्यांकन, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, 1997, पृ. 8

[13] वही, पृ. 50

[14] साक्षान्त मस्के: परंपरागत वर्ण व्यवस्था और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 51

[15] वही, पृ. 53

[16] वही, पृ. 53

निर्मल सुवासिया, शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, मोबाइल - 9660795075
प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, राजस्थान, E-mail - suwasiyanirmal@gmail.com